सायबर मौहल्ला कब बना था?
शुरु में उसकी क्या प्रक्रिया थी?
सायबर मोहल्ला की शुरुआत हुई आज से चार साल पहले, यानी 2001 में। शुरु में उसकी प्रक्रिया रही तरह-तरह से शहर को देखना और लोगों को जोड़ना। अपने आस-पास दबी हुई कहानियों को उभारना और एक ऐसी जगह बनाना जहाँ लोग अपने क़िस्से कहानियों को एक-दूसरे से बाँट पाएँ। एक ऐसी जगह ख़ुद से बनायें जहाँ उनकी बातों की गर्माई हो, और वो अपनी बेचैनी को एक-दूसारे से बयाँ कर सकें। शुरु में कुछ सोच और समझ थी कि शहर को कैसे समझा जा सकता है? हमारी बस यही सोच है कि हमारे आस-पास का माहौल और शहर कैसे एक-दूसरे से जुड़ता है? धीरे-धीरे शुरुआती दौर में बदलाव आने लगा। आज सायबरमोहल्ला के फैलाव में कई परतें चढ़ चुकी हैं, जिसके हिस्सेदार या साथीदार लगभग 50-60 लोग हैं। अलग-अलग लोगों, अलग-अलग प्रक्रियाओं और अलग-अलग सोच में बहुत कुछ होता है जिसे एक-दूसरे से बातचीत का रिश्ता बनाकर बयाँ किया जाता है। जहाँ सुनने वाले और सुनाने वाले दोनों ही इस समझ के हिस्सेदार होते हैं। इन अहसासों को उभार पाना और समझ पाना शायद तभी मुमकिन होता है। जब हम कोई ऐसा दौर चलाएँ जिसमें बातचीत का, शख़्सियत का, जगह का, माहौल का अपना ही तालमेल हो। अब सायबर मोहल्ला एक ऐसी जगह बन चुका है जहाँ हमउम्र साथियों के शहर को देखने, सोचने, सुनने, समझने, कहने के सफ़र से अपनी बात को रखने और एक संदर्भ बनाने का नज़रिया मिला।

लेख, फ़ोटोग्राफ़, ग्राफ़िक्स:
एलएनजेपी, दक्षिणपुरी और नांगलामाची के कंप्यूघर के सभी शोधकर्ता

संपादन, सज्जा और प्रस्तुति:
यशोदा सिंह, लख्मी चंद कोहली, सूरज राय, लव आनंद

संपादकीय सुझाव:
प्रभात कुमार झा, मृत्युंजय चटर्जी, श्वेता सारदा

प्रस्तुति सहयोग:
सोहन पाल, पुष्पा राय

प्रकाशक:
अंकुरः सोसायटी फ़ॉर ऑलटरनेटिव्ज़ इन एडुकेशन, 7/10 सर्वप्रिय विहार, नई दिल्ली - 110016
सराय - सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डिवेलपिंग सोसाइटीज़, 29ए राजपुर रोड, दिल्ली - 110054

क्या हुआ इतने समय से चिट्ठी क्यों नहीं लिखी?

इस पत्रिका का अगला अंक है —
सफ़र में चलते गुज़रते कुछ निशानियाँ रख जाएँ, किताबों में कुछ तितलियाँ रख जाएँ। लोग थक न जाएँ राहों में कहीं, रास्तों पर कुछ कहानियाँ रख़ जाएँ।।
अगर आप इस अंक के लिए कुछ लेख सफ़र से जुड़ते हुए आपबीती, कुछ सफ़र के खट्टे-मीठे क़िस्से हमें भेजें तो हमें ख़ुशी होगी।

हमारा पता है, आप ही की लोकैलिटी में कम्प्यूघर,या
broadsheet@cm.sarai.net
ankureducation@vsnl.net

नमस्कार साथियों,

आज हम बात करेंगे अपनी मोबाइल लाईब्रेरी की यानी के चलता-फिरता एक पुस्तकालय। जो एक रेहड़ी पर लगाया जाता है। जो हमारी बस्ती के कई जगह पर लगती है। हमने हाल ही में इसे दक्षिणपुरी के एक साप्ताहिक शुक्रबाजार में लगाने की सोची। ये बाजार दक्षिणपुरी में सड़क के किनारे लगता है जो विराट सिनेमा से दक्षिणपुरी के अंदर जे ब्लॉक तक आता है। हम जानते है कि बाज़ार में खरीदने और बेचने का काम होता है। हमने सोचा क्यों न हम शहर की भीड़ में उतरे जो चीख़ती-चिल्लाती आवाज़ों के साथ लोगों को अपनी ओर खींचती है। जहाँ बाज़ारों में एक तरफ़ बोलियाँ लगाई जाती है। अलग-अलग दुकानों में अलग-अलग सोच में डूबे लोग दिखते हैं जो अपनी ही जद्दोजहद में मसरूफ़ रहते है। हमने सोचा चलो उनके बीच हम एक नया अंदाज लेकर उतरे उनको तोहफे में भेंट करें। जब हम बाज़ार के रस में अपनी मोबाइल लाइब्रेरी को लेकर घुसे तो वो समा कुछ और ही था। कितने शख़्सो की आँखें हमें सवालों से भरी और जिज्ञासा से देख रही थी। जब हमने अपनी मोबाइल लाईब्रेरी पर अपनी अलग-अलग पब्लिकेशन रखी जैसे वॉलमैग्ज़ीन, बुकलेट, ब्रॉडशीट को सजाकर रखा और साथ ही एक टेपरिकार्डर भी चलाया और उसमें एक अस्तबल की कैसेट भी चलाई जिसमें कुछ घोड़ों पर फिल्माये गये गाने थे जो हमने अस्तबल वालों से बातें करके बनाये थे और उनकी ही कुछ बातों से निकले कुछ सवाल, वो हम सभी को सुना रहे थे। सभी दुकान वाले जो रोड पर ही अपनी दुकान लगाकर बैठे थे और कुछ टेबल पर चीज़ें बेच रहे थे और तो ओर आते-जाते शख़्स भी हमें देख रहे थे शायद सोच रहे थे कि ये कैसी दुकान है। ये किताबें बेच रहे है क्या? बहुत से शख़्स तो हमें और मोबाइल लाइब्रेरी को रुक कर भी देख रहे थे। ये बात तो तब की है जब हम **मोबाइल लाइब्रेरी** को बाज़ार में लगाने के लिये ला रहे थे। अब हमारी मोबाइल लाइब्रेरी बाजार में और दुकानों के बीचो-बीच एक पेड़ के नीचे खड़ी थी। पर हमारे साथियों को ब्रोर्डशीट बाँटने में झिझक सी हो रही थी। शायद इसलिये की हम मोबाइल लाइब्रेरी को एक खुले वातावरण लेकर खड़े थे। हमारे पास से निकलते लोग हमारी ब्रोडशीट और वॉलमैग्जीन को देख रहे थे मगर कोई भी नज़दीक आकर नहीं देख रहा था। पहले कभी किसी ने किताब को इस तरह से नहीं देखा था जिस तरह से बाजार में चीज़ें बिकती है। शायद बाज़ार में लोग हमें भी कुछ बेचने वाला ही समझ रहे थे फिर सोचा की भीड़ को अगर समझना है तो उसमें घुसना ही पड़ेगा। चलो हमें ही शुरुआत करनी चाहिए। क्यों न हम लोगों के साथ बातें करें और उन्हें ये तोहफे में दे?

जब हमारे पास से एक शख़्स गुजर रहा तो मैंने फाटक से उसे लपका और कहाः "हैलो भाई साहब ये देखिये बड़े-बड़े शहरों में कुछ नम बातें आप ही के लिये है, बिलकुल नया है पढ़कर देखिये। देखिये इसमें आपके लिये आप ही चाहत से जुड़ी कई चीज़ें होगी। इसका कोई टैक्स नहीं है ये बिलकुल फ्री है.एकदम फ्री। बस इतना कहते ही उसने ब्रोर्डशीट को लिया और हाथों से उसे मोड़ा और चला गया। बस फिर क्या था अब तो सभी में जोश सा भर गया और अपने हाथों में ब्रोर्डशीट को लेकर वो रेहड़ी के आगे खड़े हो गये और सभी से बातें करने लगे। एक-दूसरे को छोटी-मोटी बातों में जोड़ने लगे और जब कोई शख़्स ब्रोर्डशीट को लेकर पढ़ता हुआ जाता तो एक अलग सी खुशी होती और हमारे दो साथियों ने तो बाजार के अंदर लगी दुकानों पर भी ब्रोर्डशीट बाँटी लगभग 20 से 25 दुकानों पर ऑटो स्टैंड पर आते-जाते लोगों को ये तोहफे के रुप में दी। ब्रोर्डशीट बाँटते हुये काफी लोगों से अच्छी खासी बातचीत भी हुई। एक ऑटो वाले ने तो हमसे बात करके ब्रोर्डशीट को अपने ऑटो में छत पर फँसे अख़बार के साथ लगा दिया। इसी तरह अपनी बस्ती में ये पब्लिकेशन बाँटते हुये देखा की लोगों की पसंद, उनके नख़रे और एक देर तक सोचने वाला सेंस जो पूरा समझने के बाद में कोई शख़्स किसी चीज़ को अपनाता है। दूसरी तरफ किसी का नाराज़ चेहरा तो कोई अपनी मस्ती के साथ में झूमता हुआ चला आता है। किसी की तो "हाँ-हाँ और ना-ना को भी सुना। इस तरह से लोगों और बाज़ार में एक को समझने की एक कोशिश की। कोई तो एक बार में ही हमसे वॉल मैग्ज़ीन, ब्रोर्डशीट ले लेता है तो कोई वहाँ से कटता। हमें ज़्यादातर लोग नज़रअंदाज भी कर रहे थे पर कहते है कि सभी लोग एक जैसे नहीं होते सभी का सोचने-समझने का अपना एक अलग नज़रिया होता है। इस मज़ेदार मंजर के बितने के बाद जब मैं करीब 10 बजे बाजार गया तो लगभग दुकानों और फेरीवालों ने तो अपना समान बाँध लिया था। बाजार उठ रहा था सिमटती हुई बाजार की रौनक में वो सीन जो शायद कभी सोचा भी नहीं होगा? किसी दुकान वाले ने हमारी ब्रोर्डशीट का हवाई जहाज बनाकर उड़ाया जो सड़क पर एक पत्थर के नीचे उल्टा दबा पड़ा था। दिमाग में से एक सवाल उठा कि हमने कितने जोर-शोर से ब्रोर्डशीट बाँटी और ये क्या हुआ? हमने अपना पब्लिकेशन बस्ती के लोगों के हाथों में दिया। उन्होंने उसका हवाई जहाज बनाकर हवा में फेंका तो वो क्या है? जिसे लोग अपने पीछे निशान की भाँति छोड़ जाते हैं। जब बाजार चढ़ चुका था तो हमने कुछ बातें सुनी। जो लोग शक के बिनहा पर कह रहे थे ये कैसे तोहफे बाँट रहे थे। एकदम अलग चीज़ है। कोई तो कहता ये क्या कर रहे हो? कैसे तोहफे बाँट रहे हो? ये पहली बार बाज़ार में हमारी उतरने के बाद में समझ बनी है जो अलग रुपों और शख़्सो के भी हमारे सामने आयेगी। अब हम हर बार बाजार में अपनी मोबाइल लाइब्रेरी लगायेंगे उसी जगह और उसी तरह पर एक नये अंदाज में तो मिलते है अगले शुक्रबाजार आना जरुर।

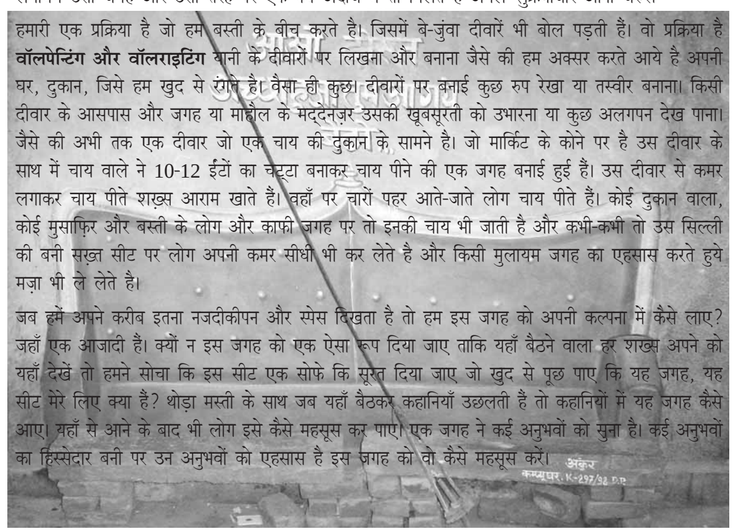

हमारी एक प्रक्रिया है जो हम बस्ती के बीच करते है। जिसमें बे-जुंवा दीवारें भी बोल पड़ती हैं। वो प्रक्रिया है **वॉलपेन्टिंग और वॉलराइटिंग** यानी के दीवारों पर लिखना और बनाना जैसे की हम अक्सर करते आये है अपनी घर, दुकान, जिसे हम खुद से रंगते है। वैसा ही कुछ। दीवारों पर बनाई कुछ रुप रेखा या तस्वीर बनाना। किसी दीवार के आसपास और जगह या माहौल के मद्देनज़र उसकी खूबसूरती को उभारना या कुछ अलगपन देख पाना। जैसे की अभी तक एक दीवार जो एक चाय की दुकान के सामने है। जो मार्किट के कोने पर है उस दीवार के साथ में चाय वाले ने 10-12 ईंटों का चट्टा बनाकर चाय पीने की एक जगह बनाई हुई हैं। उस दीवार से कमर लगाकर चाय पीते शख़्स आराम खाते हैं। वहाँ पर चारों पहर आते-जाते लोग चाय पीते हैं। कोई दुकान वाला, कोई मुसाफ़िर और बस्ती के लोग और काफी जगह पर तो इनकी चाय भी जाती है और कभी-कभी तो उस सिल्ली की बनी सख़्त सीट पर लोग अपनी कमर सीधी भी कर लेते है और किसी मुलायम जगह का एहसास करते हुये मज़ा भी ले लेते है।

जब हमें अपने करीब इतना नजदीकीपन और स्पेस दिखता है तो हम इस जगह को अपनी कल्पना में कैसे लाए? जहाँ एक आजादी है। क्यों न इस जगह को एक ऐसा रूप दिया जाए ताकि यहाँ बैठने वाला हर शख़्स अपने को यहाँ देखें तो हमने सोचा कि इस सीट एक सोफे कि सूरत दिया जाए जो खुद से पूछ पाए कि यह जगह, यह सीट मेरे लिए क्या है? थोड़ा मस्ती के साथ जब यहाँ बैठकर कहानियाँ उछलती है तो कहानियों में यह जगह कैसे आए। यहाँ से आने के बाद भी लोग इसे कैसे महसूस कर पाए। एक जगह ने कई अनुभवों को सुना है। कई अनुभवों का हिस्सेदार बनी पर उन अनुभवों को एहसास है इस जगह को वो कैसे महसूस करें।

बड़े-बड़े शहरों में कुछ नम बातें

दोस्ती की तलाश में कुछ लेख

तीसरा अंक, 01 सितम्बर से 01 नवम्बर 2005

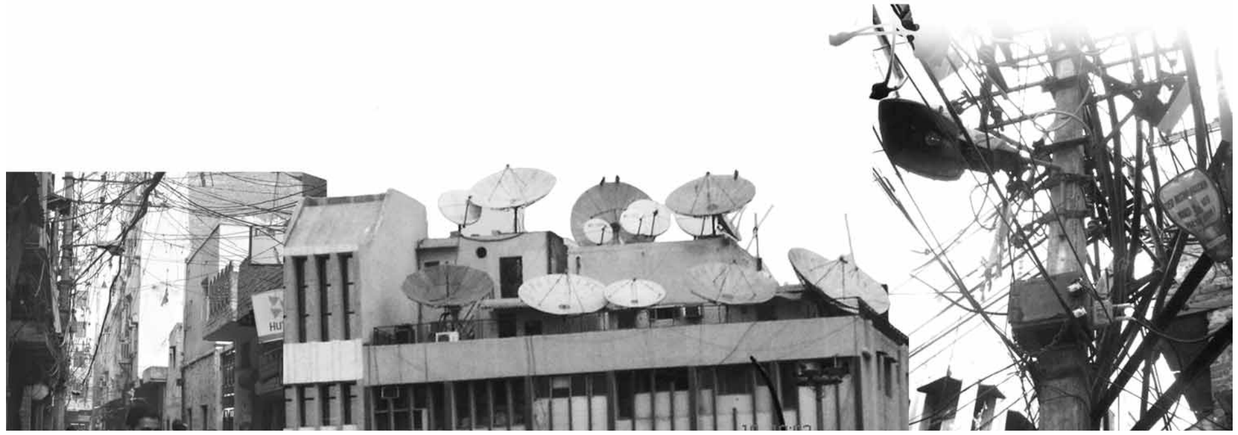

वक़्त के साए में हालात बदल जाते हैं
बातें नहीं रूकतीं उनमें जज़्बात बदल जाते हैं।

धृतराष्ट्र - संजय मैं अपनों की आवाज़ नहीं भूलता क्योंकि, मैंने उनको कई समय से सुनता आ रहा हूँ या उनके सुनने को अहमियत दी है।

संजय - यहाँ हम लोग जब किसी को सुनते हैं, तो हमारे मन में छवि किस चीज़ की बनती है।

धृतराष्ट्र - अगर हम सुनने वाले को सुन रहे हैं तो छवि हमेशा उसी इंसान की बनती है। जो हमें सुना रहा है। मगर कई बार हम लोग उसकी बातों को सुनते हैं तो माहौल खुद छवि बना लेता है।

संजय - महाराज - मैंने एक बार देखा कि एक आदमी जो कि (गैस वाला हमराज चूरन लेकर) स्पीकर लेकर गली-गली घूमकर अपने सामान की बिक्री करता है। उस स्पीकर से निकलती आवाज़ को सुनकर बच्चे उस चीज़ की तरफ़ खिंचते हैं जिस चीज़ में से आवाज़ निकल रही हैं जबकि समझदार (बड़े) लोग उस आवाज़ की तरफ़ खिंचते जो वो चीज़ कहना चाहती है। शायद सुनकर मन में छवि बनना सुनने के दोनों पहलुओं पर निर्भर है।

धृतराष्ट्र - हम लोगों को सुनें या आस-पास को पहलू यही कहते हैं। बस फ़र्क़ यह है कि हम लोगों को सुनते समय अहमियत ज़्यादा देते हैं और माहौल को कम।

संजय - हम अपने आसपास की आवाज़ों में अहमियत कम और ज़्यादा किस तरह देते हैं।

धृतराष्ट्र -

संजय -

धृतराष्ट्र - जो आवाज़ हम पर हावी होती है। हम सुनने में उसे ज़्यादा अहमियत देते हैं। मगर कई बार हम आवाज़ पर हावी होकर उसे सुनने की कोशिश करते हैं।

संजय - सुनना और उस पर ध्यान लगाना यह तो बहुत हद तक सुनने वाले पर अगर हम किसी को कुछ सुनाते हैं तो क्या तरीक़े और सोचत होती है। मैंने देखा कि लोग बड़े लाउड स्पीकर लगवाकर कॉलनी, बस्तियों में एलान करवाते जिसे सुनकर वहाँ के माहौल में परिवर्तन आ जाता है।

धृतराष्ट्र - इस तरह से कुछ ख़ास बातें सब तक पहुँचाई जाती हैं। जिनमें ख़बरें ख़ासतौर पर होती है। जो कि वहाँ के लोगों को बताने का तरीका बना है।

संजय - खोया-पाया केन्द्र में या एलान कराकर हम लोग कुछ बताकर सुनने वालों से इच्छा करते हैं कि वो भी हमारे मतलब का कुछ बताएं। या फिर ऐलान सुनकर लोग एक-दूसरे से मिल पाए।

धृतराष्ट्र - हमारी आवाज़ या सुनना यह क्या है। या हम इस चीज़ से क्या समझते हैं?

संजय - आवाज़ें हमारे हालचाल को बताती हैं। और अपने मूड को बदलने के लिए भी हम सुनना पसन्द करते हैं।

धृतराष्ट्र - हाँ कई बार हमें सुनकर ही किसी का हाल बता सकते हैं। और माहौल को सुनकर ही हम वहां पर होने वाले क्रिया कलाप का पता लगा सकते हैं।

संजय - लोग अपने काम में अपना मन लगाने के लिए या काम में समय बिताने के लिए अपना कुछ मनपसंद सुनना चाहता है। जैसे कारखाने में काम करते कुछ कारीगर रेडियो या डैक।

संजय - आवाज़ें हमारे हालचाल को बताती हैं। और अपने मूड को बदलने के लिए भी हम सुनना पसन्द करते हैं।

हमारा सुनने के साथ रिश्ता इतना ख़ास है कि हम लोग उसे अहमियत ही नहीं देते। हम लोग वो सुनना चाहते हैं जो हमें पसंद हो।

हम जिस माहौल में रहते हैं वहाँ हर चीज़ आवाज़ करती है हर जगह आवाज़ करती है इनमें से बहुतों को हम सुन पाते हैं। इसी वजह से शायद हम अपनी मनपसंद आवाज़ सुनना चाहते हैं।

टेक्नॉलजी इस चाहत को पूरी करने के लिए महत्वपूर्ण औज़ार बन गया है। सिर्फ़ सुनना ही नहीं सुनाने के लिए भी।

शमीम खाला खुशमिज़ाज औरत है

शमीम ख़ाला को अपनी सिलाई की मशीन बहुत अज़ीज़ है। रोज़ सुबह 10-11 बजे तक जब वो अपने सिलाई करने बैठती हैं तो सबसे पहले अपनी प्यारी सालों पुरानी मशीन को साफ़ करती हैं। फिर शुरू करती हैं कपड़े सीना। बहुत सालों का रिश्ता है इन तीनों का, यानी शमीम ख़ाला का, सिलाई मशीन का और कपड़ों का। जब कभी-कभी यह सिलाई मशीन बीच-बीच में चुग्गा देती है या जाम होने लगती है तो उन्हें किसी कारीगर के पास जाने कि ज़रूरत नहीं पड़ती क्योंकि शायद अब मशीन उन्हें और वो मशीन को समझने लगी है। तभी तो वो अपनी मशीन की छोटी-मोटी बीमारियाँ खुद ही सही कर लेती हैं।

जब चार साल पहले उनसे हमारी पहली मुलाक़ात हुई तो इसी पहचान के साथ हुई थी कि वो कपड़े सीती हैं। लगता है

जो कि जो आसपास वाले या जो उनके ग्राहक हैं वो अपने कपड़े सिलवाते वक़्त अपने नाप या अपने नाप के कपड़े नहीं देते होंगे। शमीम बानोजी को पता होगा कि किसके तन पर कैसी फिटिग बैठती हैं? और किसको कैसा डिज़ाइन पसंद है। शमीम खाला अक्सर मशीन के आगे बैठी दिखती हैं। आसपास बहुत सारे रंग-बिरंगे बिना सिले कपड़े बिखरे होते हैं और उनकी नाक पर चश्मा रहता है कभी वो चश्मे के द्वारा देखकर आँखें नीचे करके कपड़ा सीती है तो कभी बिना चश्मे के। कपड़े सीते-सीते नज़रे उठाकर वो माहौल का जायज़ा भी लेती रहती हैं। अगर कभी सुबह या शाम में चाय की फैल रही खुशबू के साथ उनकी बेटी या बहू की आवाज़ आती "अम्मी चीनी नही हैं खत्म हो गई है" तो वो कहती "शहज़ाद को भेज दो, भाई मौला कि दुकान पर डेढ़ किलो चीनी ले आएगा"

एक परचून की दुकान से घर में ज़रूरतों की चीज़ें आती है जिनका हिसाब किताब शमीम खाला रखती है जब महीने के आखिर में उनके बड़े बेटे की सैलरी आती है तब वो सबका हिसाब चुकता करती हैं। वो मशीन पर हाथ चलाते हुए ही कहती हैं "बेटा शबाना अपने अब्बू से कह दे आज की हंडिया के लिए मस्जिद वाली दुकान से गोश्त ला देंगे वरना गोश्त 12 बजे तक खत्म हो जाएगा। गुड्डू कह रहा था कि गोश्त बने हुए काफी दिन हो गये"।

शमीम खाला अपने घर में ही रहती है। जब उनको कहीं जाना होता है (टॉयलेट, बाज़ार, अपने रिश्तेदारों में) तो नज़र आती है। अपने मोहल्ले की गली में भी बहुत कम नज़र आती हैं। शमीम खाला के घर में तीन-चार मुर्गियाँ पली हुई है जिनके होने की वजह से इनके घर में देसी अण्डों की कमी नहीं होती।

शायद इनके घरवालों के लिये देसी अण्डे उतने मायने नहीं रखते जितना औरों के लिये मायने रखते हैं। जिनके पास मुर्गी नहीं होती और जिनको अण्डा बाज़ार से खरीदना पड़ता है जो कि पाँच रु. का एक मिलता है। जब एक बार मुर्गी ने अण्डे दिये तो शमीम खाला ने अपनी बेटी से कहा "बेटा शबाना दो अण्डा उठाके रख देना कल शहनाज़ आई थी उसके भतीजे को सर्दी ज़ुख़ाम हो रहा है तो डाक्टर ने कहा है इसको गर्म चीज़े खिलाओं। उसने मुझसे दो देसी अण्डो के लिए कहा था। शमीम खाला खुशमिज़ाज औरत हैं पर वो ज़्यादा मोटी नहीं है। अगर कभी हम उनके घर जाते हैं और वो अपनी लड़कियों (जो कि 20-22 साल की होगी) के साथ बैठी हो तो एक नज़र मारकर ध्यान से देखना पड़ता है कि शमीम खाला कहाँ हैं? वो अपनी बेटियों के साथ खूब हँसी मज़ाक करती हैं। शमीम खाला को कपड़े की काफी परख है और क्यों न हो आखिर वो दर्जन हैं। जब उनकी बाज़ार से अपनी मर्जी से कुछ सामान या कपड़ा खरीद कर लाती है तो शमीम खाला पूछती हैं "कहाँ से लाई हो और कितने का है?" जब उनकी बेटी उन्हें जगह और कीमत बताती हैं तो कभी तो वो कहती है अच्छा है पर कभी कहती है ये कपड़ा तिराहे पर अच्छा मिलता है उस फलां-फलां दुकान वाले के पास या ये कपड़ा तो इतने रु. मीटर चल रहा है तुम मंहगा ले आई हो। शमीम खाला को मार्किट में चल रहे कपड़े, कपड़ों के डिज़ाइन और पैसे आदि के बारे में मालूम रहता है।

मशीन चलाते-चलाते जब उनका हाथ थक जाता है तो वो मशीन रोककर एक लंबी साँस भरती हैं। उनकी नज़र खिड़की से आती तेज़ रोशनी देने वाली सूरज की किरणों पर पड़ती तो वो अपने आप से ही कहती "सूरज सिर पर चढ़ने को आया और सुबह से एक कमीज़ भी नहीं सिल पाई" और वो फिर से शुरु हो जाती है धड़-धड़ मशीन चलाने की आवाज़ रफ्तार पकड़ लेती है। मशीन पर से सिलाई का काम पूरा हो जाता है तो शमीम खाला अपने आगे से मशीन को हटाकर कपड़ों की कटिंग करने में लग जाती हैं। जिसके लिये उन्हें बड़ी और साफ सुथरी जगह चाहिए होती है ताकि ग्राहक का कपड़ा खराब न हो। कपड़ों के ढेर में से कोई अच्छे पेन्ट या मुलायम कपड़ा हाथ लगता है तो वो उसे निकालती है और सोचने लगती हैं अबकी बार शबाना बुशरा का ऐसा सूट बनवाऊँगी आख़िर मेरी बच्चियाँ पूरे रोज़े रखती हैं। कपड़ा काटने के बाद खाला कुछ देर लेट जाती हैं इसी समय उनके रोज़ की चाय आ जाती है। उठकर वो चाय का जायका लेते हुए चाय पीती हैं। चाय पीने के बाद खाला में एक फुर्ती सी आ जाती है और वो फिर मशीन को अपने आगे खिसकाती है और आँखों पर चश्मे को चढ़ातीं कपड़े सिलने में मगन हो जाती हैं। मशीन चलने के साथ-साथ उनके दिलो दिमाग में भी काफी कुछ चलता रहता है जैसे कि अबकी बार रमज़ान का सीज़न आएगा तो घर में सफेदी करवानी है काफी मैली हो गई हैं दीवारें।

मैली हो गई हैं दीवारें

अभी कुछ समय पहले की बात है हमारे लैब से हमारी एक साथी इंग्लैन्ड के लीवरपुल शहर गई। जाने से पहले पता चला कि वहाँ पर जो बंदरगाह है जहाँ लोग आते हैं, रुकते हैं और फिर अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। उस जगह पर पहले लोग काम करते थे, सामान को उठाने का। जहाज़ से लोगों का सामान उतारना, जाने वाले लोगों का सामान जहाज़ में चढ़ाना आदि। पर फिर एक बदलाव आया जो शायद वहाँ की सरकार ने किया था। उन बंदरगाहों पर इंसानों की जगह मशीनों को लगा दिया जो तेज़ और सरल थीं। जिससे काम करने में कम समय लगे। इससे शहर के ढाँचे को तो खूबसूरत बनाने की सोचा गया पर वहाँ (बंदरगाहों) पर काम करने वाले लोगों की ज़िन्दगी को बदसूरत बनाने में मशीनों का पूरा हाथ रहा।

उसने हमें बताया कि वहाँ बहुत बड़े-बड़े आकार की मशीनें थीं। जिसके आगे हम ऐसे लग रहे थे जैसे हाथी के सामने चींटी। जहाँ वो सड़क पर चल रही थी वहाँ एक तरफ बड़े-बड़े आकार की मशीनें खड़ी थी जो लोहे की थी और शायद स्टील की भी। हम समझाने की कोशिश में थे कि आख़िर यह कैसी मशीनें हैं? कई मशीनों के आकार हमारी सिन्टेक्स की पानी की टंकी की तरह थे तो किसी में बहुत सारे मोटे-मोटे स्टील के पाइप पता नहीं कहाँ निकलकर कहाँ जा रहे थे। हर मशीन का आकार यानि ऊँचाई एक जैसी थी पर बनावट में फ़र्क था। उन मशीनों के पीछे हमें न बंदरगाह नज़र आ रहा था न पानी। सड़क की दूसरी साइड पर ऊँची बिल्डिंगें बनी हुई थी पता नहीं वो घर थे या कारख़ाने। ऐसी जगह पर घर होना तो मुनासिब नहीं क्योंकि वहाँ की फिज़ाओं में तेल की अजीब-सी बदबू रमी हुई थी।

वहाँ हमें अपने देश की फ़ैक्ट्री की तरह ज़्यादा लोग नज़र नहीं आ रहे थे बड़ी मुश्किल से 1-2 लोग नज़र आ रहे थे जो कि हरे रंग की पट्टियों का जैकेट पहने थे जिससे लग रहा था कि वो मज़दूर है और ड्यूटी पर हैं।

उस जगह के सन्नाटे में बहुत सारे सवाल थे या फिर हमारी साथी ही उस जगह में अपने सवाल छोड़ रही थी। वो सोच रही थी कि यहाँ जब लोग पहले लंच में मिलकर चाय, कॉफी या बियर पीते होंगे और सिगरेट के धुंए में अपने घरों की बातें, क़िस्से-कहानियाँ उड़ाते होंगे तो उनके हँसी के ठहाकों से माहौल में कितनी ही तरह की तरंगे बजती होगी?

लोग कैसे रोज़ अलग-अलग और अपने जाने-पहचाने रास्तों से गुज़रकर इस जगह में जमा होते होंगे?

इस जगह पर पहनने वाली अपनी ड्रेस से लोगों को कितना प्यार होगा?

इस जगह पर आकर लोगों ने न जाने कितने रिश्ते बनाए होंगे, और उन्हें अपनी ज़िन्दगी में एक अलग जगह दी होगी?

इस जगह पर आकर लोग कितने उत्साह से अपने और बाक़ी साथियों का इंतज़ार करते होंगे?

उस इंतज़ार में कितना मज़ा होगा और भी हज़ारों सवाल उमड़ रहे थे मन में। कल्पनाओं में छवियाँ भी बन रही थी। इस जगह को लेकर अब लोगों के मन में कैसे सवाल आते होंगे?

क्योंकि लोगों की यादें इस जगह से जुड़ी हुई है।

कभी-कभी उसको याद करके किसी की पलकें भी नम हो जाती होंगी।

इस बदलाव से लोगों की ज़िन्दगी में भी कितना बदलाव आया होगा।

इस बदलाव के साथ-साथ इस जगह ने लोगों की ज़िन्दगी पर भी सवाल लगा दिये।

मैं: आपका नाम क्या है?

वो: सुभाष कुमार।

मैं: हमने सोचा था कि आपका नाम पंकज है क्योंकि आते-जाते हम इन फ़ोटो स्टुडियो को देखते है, हम तो आपको ही पंकज समझते थे।

सुभाष: (हंसते हुए) नहीं, नहीं। पंकज तो स्टुडियो के मालिक का नाम है और मैं तो सिर्फ़ यहाँ पर काम करता हूँ।

मैं: आप एक फ़ोटोग्रैफ़र है, आपका फ़ोटो के साथ एक काम का रिश्ता है। क्या मैं फ़ोटो के बारे में आपसे कुछ बातचीत कर सकती हूँ?

सुभाष: (उनके बाल बहुत घने और काले है, उस पर हाथ फेरते हुए) हाँ, पूछो आपको क्या बातचीत करनी है?

मैं: (देखिए मैं फ़ोटो खिंचवाती हूँ, खिंचती भी हूँ और इकट्ठा करती हूँ, मुझे इसमें मज़ा आता है।) पर आपका फ़ोटो देखने खिंचने का क्या नज़रिया होता है?

सुभाष: (जींस की पैंट में हाथ खिंचते हुए, होंठों पर हंसी और बोलेद्ध अब मैं आपके इस सवाल का क्या जवाब दूँ? थोड़ी देर लगातार चुप रहने के बाद बोले कि में जब भी कोई फ़ोटो खींचता हूँ तो सोचता हूँ कि फ़ोटो अच्छा आना चाहिए। जैसे खिंचवाने वाला चाहता है।

मैं: (मैंने सोचा इस सवाल को मैं आगे खींच सकती हूँ पर शायद वो अच्छा से आगे कुछ न बोले कोई दूसरा सवाल पूछना चाहिए) आप फ़ोटो किस तरह से खींचते हैं?

(तभी दरवाज़ा खुला) यार! फ़ोटो तो दे दो! मुझे डिलीवरी देनी है। मैं दरिया गंज तक जा रहा हूँ। (एक 18-20 साल तक का एक लड़का उसके पास आकर बोला। जो शायद उसके साथ ही काम करता है।)

दे दूँगा। पर तुने कहाँ रखा है? (सुभाष ने उठकर कबर्ड खोला और थैली उसको पकड़ा दी। शायद उसमें फ़ोटो थे। पर सुभाष की नज़रे हमारी तरफ़ ही थी वो वापस हमारे पास आकर बोले।)

सुभाष: वैसे तो फ़ोटो खींचना आम बात है। क्लीक किया और फ़ोटो खिंच गया। पर हमारे पास जब भी कोई फ़ोटा खिंचवाने आता है तो ख़ासकर उसके चेहरे के हिसाब से लाइट, कैमरे का फ्रैम और कैमरे से उसके डिसटंस को देखना पड़ता है। (वो साथ-साथ में हाथों को भी घुमा-घुमाकर हमे समझाने की कोशिश करते और मैंने महसूस किया कि शायद वो अभी भी जिस तरह के हाथों का इशारा कर रहे हैं। कैमरा न होते हुए भी उनके हाथ में कैमरे को पकड़ने का एहसास है।)

मैं: आपने फ़ोटोग्रैफ़री कहाँ से सीखी है?

(बाहर एक और का आकर रूकना, जो शायद कुछ पूछना चाहती थी)

सुभाष: जी, आपको क्या काम है, मुझे उनसे मिलना था, वो अभी नहीं है। आप 5 बजे तक मिल सकती हो। (यह सुनकर वो चली गई)

मैंने अपनी साथी से पूछा यार सवाल ठीक है न?

सुभाष: मैंने किसी इंस्टीट्यूट से नहीं सीखी। अपने आप देखते-देखते आई हैं, मतलब मैंने ख़ुद से सीखी है।

मैं: (यार यह सवाल भी फ़ालाप रहा, आगे क्यों सीखी, क्या सोच थी, किसने कहा, यह सब सवाल पूछने का मन नहीं किया।) मैंने देखा है जब किसी को फ़ोटो खिंचवाना नहीं आता तो आप उसको स्टाईल बताते हो। आप उसको स्टाइल बाते हो तो उसका चेहरा देखकर, या इस तरह से फ़ोटो अच्छा आएगा, आप किस तरह से इस बात का फैसला लेते हो?

सुभाष: (हंसते हुए, यार आपके सवाल बहुत ही गंभीर होते है, मुझे पता नहीं चल पाता कि मैं क्या जवाब दूँ?) वैसे तो फ़ोटो खिंचवाना भी एक कला है। मैं जब भी किसी को स्टाइल बताता हूँ तो यही सोचता हूँ कि यह स्टाईल उस पर अच्छा लगेगा। जैसे सिम्पल बैठना भी, एक तरह का स्टाइल है। ('यार' शब्द से हम उसकी आदत का अंदाज़ा लगा सकते हैं। शायद मुझे बताने की ज़रूरत नहीं। उनकी उम्र 25 या 30 साल तक के बीच में से होगी।)

मैं: जब बार-बार बताने पर भी किसी स्टाइल नहीं आता तो आप उसे किस तरह से समझाते हो?

सुभाष: (देखिए इस बार भी आपका सवाल उसी तरह का है।) जब बार-बार बताने पर भी किसी को समझ में नहीं आए तो बार-बार कोशिश करते हैं... इस तरह से दोस्ताना रिश्ता भी बनता है और ज़रूरत पड़ने पर वो हमारे पास आते भी है।

मैं क्या बाद में आप उनका मज़ाक भी बनाते हो?

सुभाष कुमार: (हंसते हुए) हाँ भई, कभी-कभार उसके जाने के बाद सबको बताता हूँ और बताकरन हंसता हूँ। पर यह तो हमारा काम है। (अब हमारी झिझक थोड़ी खत्म हुई थी और हम सोच रहे थे हम उससे दोस्ताना सवाल पूछ सकते हैं। चेहरे से तो बहुत सीरियस लगता है पर मज़ाकिया है। यह सोच कर हम भी हंसने लगे।)

मैं: आप किस तरह के फ़ोटो से अपनी दुकान को सजाते हो? अपनी खिंची तस्वीरों से या दुकान अच्छी लगेगी इसलिए ?

सुभाष कुमार: (नज़रों को बाहर की तरफ़ दौड़ाते हुए) यहाँ पर मेरी खिंची हुई एक भी नहीं है वैसे भी जो तस्वीरें हम खिंचते हैं वो तस्वीरें हम दुकान या स्टुडियों पर नहीं लगाते क्योंकि लोगों या लड़कियों को ऑब्जेक्शन हो सकता है। वैसे भी यह सब तस्वीरें बाज़ार की ख़रीदी हुई है, जिसे हमने स्टुडियो पर लगाया है। (पर अगर आप को ऑब्जेक्शन न हो तो मैं आपका फ़ोटो लगा सकता हूँ।) वैसे हम जब भी कोई फ़ोटो लगाते हैं तो अपना हुनर दिखाने के लिए और लोगों को आकर्षित करने के लिए लगाते हैं।

मैं: (तभी बाहर से दो गाड़ियों की एक साथ गुज़रने की आवाज़ ने हमारा ध्यान अपनी तरफ़ खींचा) क्या आपने अपनी मर्जी से कोई फ़ोटो खींचा है?

सुभाष: नहीं, मैंने कोई फ़ोटो अपनी मर्ज़ी से नहीं खींचा। जैसा लोग खिंचवाना चाहते हैं वैसा हम खींचते हैं। लोग अपनी मर्ज़ी का फ़ोटो खिंचवाने आते हैं जैसे कोई दाँत का, कोई सिर्फ़ आँखों का, कोई नाक का, मुँह का जहाँ उनको तकलीफ़ होती है और डॉक्टर को दिखाना होता है।

मैं: पर इन सब का तो एक्स-रे होता है?

सुभाष: नहीं यह भी एक तरह की थेरेपी है जिसका फ़ोटो खींचा जाता है और हम खींचते हैं।

मैं: कोई ऐसा चेहरा जिसकी आँखें बहुत ख़ूबसूरत हों, किसी की मुस्कुराहट बहुत प्यारी हो, किसी के हाथों का स्टाइल तो क्या आपका मन नहीं करता, बस मैं इसकी आँखों की अलग-अलग तरह से फ़ोटो लूँ? क्या कभी आपके साथ ऐसा हुआ है?

सुभाष: (हंसते हुए) ऐसे कई चेहरे हमारे पास आते हैं जिसकी हंसी हमें याद रह जाती है। जैसे एक लड़की सदा हमारे पास स्टुडियो में फ़ोटो खिंचवाने आती है। उसकी आँखें हरी-नीली हैं। मैं उसकी आँखों की बहुत तारीफ़ करता हूँ और कहता हूँ कि तुम सिर्फ़ अपनी आँखों की अलग-अलग तरह से तस्वीरें खिंचवाया करो, अलग-अलग स्टाइल में। पर वो कभी भी ऐसा नहीं करतीं। पर मैंने कभी भी सिर्फ़ उसकी आँखों की तस्वीर लेने की कोशिश नहीं की क्योंकि यह सब अच्छा नहीं लगता।

मैं: कोई ऐसा चेहरा या उसकी हरकत जो आपको याद रहे? रात को सोते समय भी, आप उसका अपने दोस्तों, रिश्तेदारों में या घर में जिक्र करें?

सुभाष: (बालों पर हाथ फेरते हुए) देखिए हमारे पास जब भी कोई फ़ोटो खिंचवाने आता है तो अपनी तरफ़ से ख़ूबसूरत बन कर आता है। बस हमें उसकी ख़ूबसूरती को कैमरे में उतारना होता है। कई चेहरे और उनकी हरकत, या उनकी कही बातें कि प्लीज़ मेरा फ़ोटो अच्छा खींचना, यह स्टाइल मुझ पर अच्छा लग रहा है या नहीं? यह फ़ोटो मुझे किसी ख़ास के लिए खिंचवाना है। यह सब बातें, चेहरे याद रह जाते हैं। पर सिर्फ़ कुछ पलों के लिए, ज़्यादा नहीं सोचते हम इनके बारे में।

मैं: (पिछली बातचीत को देखते हुए कि क्या-क्या पकड़ा है और क्या सवाल पूछ सकती हूँ) अच्छा आप यह बताइए कि जैसे कुतुबमीनार को पकड़कर या ताजमहल की चोटी को छूकर जो फ़ोटो खिंचवाते हैं, इस तरह के फ़ोटो कैसे खिंचते हैं?

सुभाष: (यह सवाल मेरे लायक ठीक है) इस तरह के जो फ़ोटो होते हैं, वो ट्रिक फ़ोटो होते हैं।

मैं: ट्रिक मतलब? ("मेरे लायक" शब्द सुनकर अंदाज़ा लगाया कि वो फ़ोटो को लेकर कुछ और सवाल की उम्मीद थी। जो हम नहीं पूछ रहे। शायद इसी बातचीत से कुछ निकल जाए)

सुभाष: ट्रिक मतलब, किसी चीज़ को दूर ले जाकर फिर पास लाना। फिर जो फ़ोटो खिंचवाता है लगता है कि वो ताजमहल को छुआ है। जबकि ताजमहल दूर और बड़ा और दूर होता है। (उन्होंने हाथ में काली रंग की थैली ली, फिर पहले हाथ के पास थैली को रखा और फिर थैली को हाथ से दूर ले गए, फिर पास लाए।) फ़ोटो खिंचवाने वाले को ख़ुद पता नहीं चलता कि फ़ोटो इस तरह का आऐगा। बस नज़रों का खेल, कैमरे की कारीगरी और फ़ोटोग्रैफ़र का हुनर है।

मैं: क्या आप भी ट्रिक फ़ोटो खींचते हैं?

सुभाष: मैं खींच सकता हूँ पर यहाँ पर हम उस तरह के फ़ोटो नहीं खींचते और न ही कोई खींचवाने आता है। यह 'तकनीकी फ़ोटोग्रैफ़ी' है।

मैं: आजकल फ़ोटो के साथ कई तरह के खिलवाड़ हो रहे हैं। जैसे एक लड़की के साथ लड़के का चेहरा जोड़ना, इस तरह के कई क़िस्से हैं। वो फ़ोटो किस तरह से तैयार किए जाते हैं?

सुभाष: (अब वो स्टूल लाकर बैठ गए) यह सब डिजिटल फ़ोटो होते है क्योंकि डिजिटल फ़ोटो में चैजमेंट कर सकते है पर मैं सिर्फ़ कोडेक कैमरा यूज़ करता हूँ जिसमें चैजमेंट नहीं कर सकते। पर बाद में हम उसको डिजिटल में जोड़ सकते है।

वैसे भी डिजिटल फ़ोटो के चैजमेंट को आसानी से पहचाना जा सकता है। इसलिए लोग अभी भी कोडेक से फ़ोटो खिंचवाना पसंद करते हैं। क्योंकि यह तस्वीर असली होती है।

मैं: क्या आप भी ऐसा करते है?

सुभाष: नहीं, ऐसा करने से क्या फ़ायदा? हम ऐसा नहीं करते। वैसे भी हमारे पास समय कम होता है और कॉल ज़्यादा।

मैं: क्या आपके पास लोग ऐसी फ़ोटो के साथ हेरा-फेरी करवाने के लिए आते हैं?

सुभाष: इस इलाक़े में अब तक तो मेरे पास आए नहीं पर हाँ कभी-कभार मज़ाक, दोस्ताने में ऐसी बातें चलती हैं पर कभी किसी को किया नहीं।

(सामने लगी वैलकम की तस्वीर को देखते हुए) हम तो आसानी से अब कंप्यूटर पर ऐसा करते हैं। किसी की तस्वीर का चेहरा बदलना और कहीं और जोड़ना मज़ा आता है, ऐसा करने में।

सुभाष: (हंसते हुए) पर ऐसी तस्वीर को आसानी से पहचाना जा सकता है। चाहे हाथ में कितनी भी सफ़ाई क्यों न हो? यह कहकर वो हंसने लगे। आख़िर यह 'मेरी' दुनिया है।

मैं: किसी हीरो-हीरोइन के साथ फ़ोटो खिंचवाना, यह किस तरह किया जाता है।

सुभाष: यह तो आम फ़ोटो है इसको मुर्ति कला कहते हैं। हीरो-हीरोईन की मुर्ति के पास खड़े होकर फ़ोटो खिंचवाया और फ़ोटो अच्छा है असली लगता है तो यह फ़ोटो की नहीं बल्कि मूर्ति की कारीगरी है। पहले बहुत लोग इसे पसंद करते थे। दशहरे के मेले में ईद के मेरे में कई बार हमने दुकान लगाई है पर अब शायद लोग इसे पसंद नहीं करते क्योंकि समझ गये है इस तकनीक को।

मैं: आजकल जो नई-नई अलबम जैसे दिल वाली या पान वाली दिल का फ्रेम बनाकर फ़ोटो यह सब फ़ोटो किस तरह से बनती है?

सुभाष: यह सब डिजिटल फ़ोटो हैं वैसे तो आज कल शादी की अलबम डिजिटल फ़ोटो से ही तैयार की जाती हैं क्योंकि इसमें बनावट और शो ज़्यादा है।

मैं: अच्छा जब आपके पास फ़ोटोग्रैफ़ी सीखने आते हैं तो आपका पहला सवाल क्या होता है उसमें?

सुभाष: मैं अपना हुनर किसी को भी विना सवाल किए दे सकता हूँ मैं विना कुछ पूछे किसी को फ़ोटोग्रैफी सीखा सकता हूँ। वैसे भी यह फ़ोटोग्रैफ़ी सीखाने का इंट्रव्यू नहीं है।

मैं: अच्छा आजकल जो लोग फ़ोटोग्रैफ़ी सीख रहे हैं उनकी क्या सोच होगी आपका इस बारे में क्या ख़याल है?

सुभाष: आजकल लोग तकनीक डिजिटल फ़ोटो देखकर फ़ोटोग्रैफ़ी सीख रहे हैं और बाद में अपने हुनर को रोजी-रोटी के रूप में देखते है किसी-किसी को फ़ोटोग्रैफ़ी का शौक होता है वैसे भी फ़ोटोग्रैफ़ी के बाद काम के काफ़ी सोर्स है कहीं पर भी अच्छे फ़ोटोग्रैफ़ी का काम मिल सकता है शायद इसलिए... (यह हमारा आख़िरी सवाल था बाद में हम बॉय कहकर वहाँ से चले आये)

नई जगह पुराने निशानों की एक यादगार होती है

नई जगह पुराने निशानों की एक यादगार होती है... और मैं नई चीज़ों को पुरानी जगह में लगाकर उसमें से नयापन निकाल देता हूँ...
मैं एक इलैक्ट्रिशियन हूँ... शायद !
वैसे यह नाम मुझे लोगों ने दिया है क्योंकि मैं सिर्फ ट्रांसफार्मर बनाता हूँ।
बाज़ार से पार्ट्स वगैरह खरीद लाता हूँ और उनसे ट्रांसफार्मर बनाकर बेचता हूँ।
क्योंकि यह काम मैं बहुत पहले से करता आ रहा हूँ इसलिए बिजली का काम भी जान गया हूँ।
पहले लोग मुझे अपने घर बिजली का काम करने के लिए बुलाया करते थे। मगर अब मैं लोगों के घर बिजली का काम करने नहीं जाता क्योंकि इसमें मुझे फायदा नहीं है। वैसे मैंने घरों में पैसों की वजह से जाना नहीं छोड़ा। मैं कुछ भी ठीक करके आऊँ कुछ दिनों के बाद बिजली की चीज़ों में कुछ न कुछ पंगा आ ही जाता है। इसके लिए वो मुझे गालियां सुनाते "साला क्या करके गया था कि फिर से खराब हो गया" इसलिए मैंने जाना ही छोड़ दिया मगर अब भी कुछ खास लोगों के घर आता जाता हूँ क्योंकि मिलने मिलाने का समय किसी के पास नहीं है तो सोचा कि इसी काम के ज़रिए मुलाक़ात होती रहे।
मेरा काम ट्रांसफार्मर बनाने का है जब मैंने शुरु में काम करने की सोची थी तो बहुत परेशानी आई थी। क्योंकि मैं ट्रांसफर्मर ठीक करने का काम नहीं बल्कि उसे बनाकर बाज़ार में बेचता था। वैसे मंहगाई होने के बाद भी मेरी लागत पहले के मुक़ाबले कम है क्योंकि पहले मुझे बाज़ार में अच्छी सप्लाई करनी थी बढ़िया कंपनी के पुर्जे लाकर उसे बारीकी से जोड़ना पड़ता था जैसे 10 इंच के ट्रांसफार्मर के लिए पुर्जे - सर्किट
(27 रु. एन्कर कम्पनी का)
केबिनेट - (50 रु-)
मेन स्विच - (30 रु-)
छोटी तारे (2 रु. पर मीटर) और ट्रांसफार्मर का कार्ड (35 रु.)
और कोइन, रोटर, मीटर वगैरह 150 से 200 रु. के बीच में आते थे। इसके अलावा मैं उस समय एक ट्रांसफार्मर 2 दिन के आसपास बनाता था और 600 से 400 के बीच में उसे बेचता था। उस समय मैं ऑर्डर पर माल बनाया करता था।
बाज़ार में अपने हक़ के लिए बहुत कम बोल पाता था। मगर अब चीज़ें मंहगी हो गई है पर मेरा अब इस काम में हाथ साफ हो गया है। अब मैं एक दिन में 3 या 4 ट्रांसफार्मर बना सकता हूँ। अभी तो मेरे पास हेल्पर भी हैं।
कभी-कभी मुझे अपने हेल्परों पर बड़ा गुस्सा आता है, क्योंकि वो लड़कियों की तरह काम करते है और हीरोपंती में रहते हैं, ऐसे डर-डर कर काम करते है कि कहीं कपड़े गंदे न हो जाए।
धूल-मिट्टी से इतनी नफरत की क्या कहूँ। मगर उन्हें धीरे-धीरे आदत पड़ जाएगी क्योंकि जब कभी मैं छोटू हुआ करता था अपने उस्ताद की दुकान में तो मैं भी ऐसे ही करता था।
मुझे अब भी याद है... पुरानी चीज़ के याद कि झलक होती है जो उन पर पड़े निशानो के रूप में दिख जाती हैं। जैसे पुर्जे मेरे लिए नई चीज़ नहीं थे और मैं उनके लिए। मगर फिर भी उन्हें साफ़ करते हुए उस माहौल में नयेपन का एहसास हो रहा था, वो क्या था?
मैं अब तक नहीं समझ पाया क्योंकि मुझे पुर्जे तो एक जैसे ही मिलते थे मगर अलग-अलग तरह के। जब मैं शुरुआत में ट्रांसफार्मर के पार्टस को जोड़ने के लिए टांके लगाता था तो जिंदगी एक टांके में जुड़ती हुई लगती थी जिसमें अलगपन तो था मगर टांके लगाने से उसकी एकरूपता का रूप मुझे बहुत अच्छा लगता हैं। इसका एक कारण यह भी है कि मेरे पापा और चाचा की फैमिली साथ रहा करती थी। तब हम पंजाब के गाँव में रहते थे। जब मैं यहाँ (दिल्ली) आने लगा तो चाचा ने पूछा कि तुम्हारे कमरे और ज़मीन का क्या करें?

मैंने कहा कि "जमीन पर खेती करना, और कमरे का जो भी कुछ कर सके वैसे किराए पर लगा देना" और जो होगा वो आधा-आधा बाँट लेंगे तो चाचा ने कहा - खेती करूंगा मैं और आधा तू रख लेगा" इतना सुनते ही पापा वहाँ से उठकर चले गए।
उसके बाद हमारी चाचा से बातचीत तो होती रही मगर उस रिश्ते में वो बात नहीं रही जो पहले थी। इसलिए जब भी मैं कोई टांका लगाता हूँ तो उस रिश्ते की टूटन दिमाग में आ जाती है। मैं सोचता हूँ कि काश मैं कोई ऐसा टांका लगा पाता कि हमारे बीच की वो दरार भर पाता।
"खैर छोड़ो" वैसे इस काम ने मुझे इतने नए रिश्ते और पहचान दी है कि मुझे कभी-कभी अपना नाम भी अजीब लगने लगता है। समय वह प्रक्रिया है जो नाम के साथ पहचान भी बदल देती है। शायद इसी वजह से नाम बदल जाते हैं, या नाम की एहमियत। मगर सवाल यह उठता है कि वह समय क्या है जो बदलाव ला रहा है?
या उस समय में क्या था?
हम किसी से रिश्ता बनाते हैं तो नाम बदल जाता है या नाम के बदल जाने से रिश्ता?
मगर उस बदलाव के बीच क्या था?
हमारे लिए हमारा नाम क्या अहमियत रखता है?
बहुत !!!
मगर उससे ज्यादा अहमियत रखता है कि कौन हमें किस नाम से बुला रहा है।
क्योंकि हर इन्सान मुझे एक ही नाम से नहीं बुलाता।

टैक्नोलोजी और जुगाड़

जिसे जितना समझोगे तुम्हारे दिमाग़ मे सवाल उतने ही बढ़ जाते हैं और वहीं खत्म भी हो जाते हैं। मगर फिर भी कई लोग सवालो के जवाब तलाशने में लगे रहते हैं। और उनकी खोज शुरू हो जाती है उन सवालों के साथ।

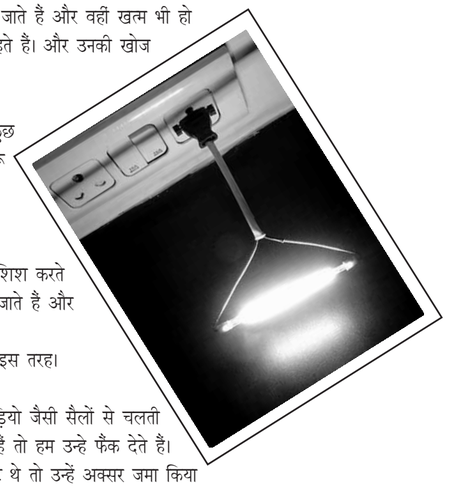

टैक्नोलोजी को लोग ही बनाते है और वही उसे इस्तेमाल भी करते हैं। वैसे लोग बहुत कुछ जानते है टैक्नोलोजी के बारे में यही कारण है कि जुगाड़ करना और कहानियाँ बनना शुरू होती हैं। टैक्नोलोजी के साथ।

लोगों के पास जानकारी भी है और सवाल भी। इसमें वो अपने आसपास की चीजों यानी टैक्नोलोजी से अपने सवालों के जबाब पाने की फ़िराक़ में लगे रहते हैं और तो और कोशिश करते रहते हैं जिन्हे हम जुगाड़ या तुक्के का नाम दे देते हैं। इन्हीं में से कुछ तो कामयाब हो जाते हैं और कुछ तो...
मगर कामयाबी एक मज़ेदार रुप लेकर सामने आती है कुछ इस तरह।

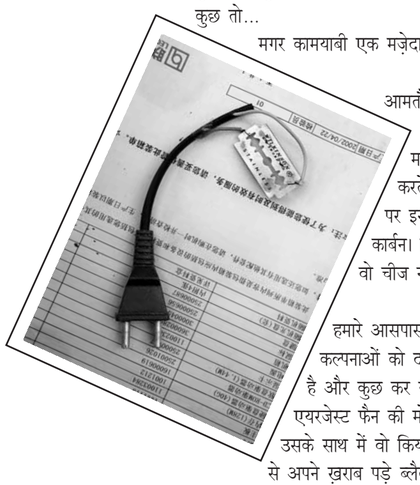

आमतौर पर दिवार घड़ी, खिलौने या रेड़ियो जैसी सैलों से चलती है और जब सैल ख़राब हो जाते हैं तो हम उन्हे फैंक देते हैं। मगर देखा गया है कि जब हम छोटे थे तो उन्हें अक्सर जमा किया करते थे। क्योंकि उस समय में हमे कुछ ज़्यादा ही मज़ा आता था चीजों को तोड़-मरोड़ के देखने में पर इसके साथ में कुछ और भी था जो हमें उत्साहित करता था। वो है सैल के अन्दर काले रंग का कार्बन। जिसे निकाल कर हम बच्चे स्कूल का ब्लैकबोर्ड और अपनी स्लेट को साफ किया करते थे और वो चीज नई हो जाती थी।

हमारे आसपास मे बहुत से लोग ऐसे हैं जो पैसो की वज़ह से अपनी कल्पनाओं को दबाते है। उन्हीं में कुछ लोग तो अपने हुनर को जाँचते है और कुछ कर जाते है जैसे कि एक साहब हैं जिन्होने एक छोटे से एयरजेस्ट फैन की मोटर ख़रीदी किसी कबाड़ी से पचास रुपये की। ओर उसके साथ में वो किया कि जो हमने सोचा भी नही था। उन्होंने उस फैन से अपने ख़राब पड़े ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी के केबिनेट मे फिट कर दिया टीवी की पिक्चर ट्युब निकाल कर जो देखने में उन्होंने एक टीवी फैन का निर्माण करा था किसी मोटर से कूलर बनाने के क़िस्से तो अब पुराने हो चुके हैं। हमारे गाँव में एक ऐसे ही मोटर से चकई (मिट्टी के बर्तन बनाने वाला पहिया) चलाते हैं।

इस्लाम भाई नाम के एक इलेक्ट्रीशियन है जिन्होंने अपना गुल्लक बनाया वो मालूम है कहाँ? बिजली के मेन बोर्ड में ताकि उनके घरवाले या चोर चुरा न सकें।

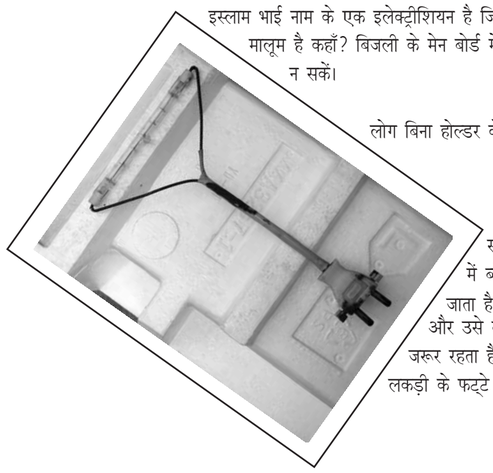

लोग बिना होल्डर के ही बल्ब जलाते हैं।

सड़क के पास एक नाई है जो लोगों के बाल काटना या शेव बनाता है वो सर्दियों के दिनों में ब्लेड में तार लगाकर उसे कटोरे में डालकर उसमें पानी डालता हैं कुछ देर में पानी गर्म हो जाता है। इसी तरह मार्किट में 10 रुपए का हीटर की स्प्रिंग आती हैं उसमें दो मोटे तार लगा दो और उसे बाल्टी में डाल दो तो कुछ देर में बाल्टी का पानी खौलने लगता है। मगर बाल्टी में करंट जरूर रहता है और बिजली भी बहुत खींचता है। लोग अपनी सेफ़्टी के लिए उस स्प्रिंग को किसी लकड़ी के फट्टे से बांध देते हैं ताकि डाल या निकाल सके।

आज की रेसिपी

हमारे होस्ट हैं: **गौरव कुमार**
(एक कूलर बनाने के लिए)

सामग्री

- एक वी.सी.डी. प्लेयर को चलाने वाली मोटर (क्योंकि यह कूलर के लायक हवा देता है)
- 2-2 फुट के 4 थर्माकोल
- कुछ तारे
- एक सोकेट
- तेज चलने वाले 4 बड़े सेल
- सेल को डालने के लिए केबिनेट
- जुगाड़ करने के लिए किसी छोटे फैन से कोई पखंडी निकाल ले (हवा देने के लिऐ)
- दो फुट का एक लकड़ी का फट्टा।

प्रयोग विधि

सबसे पहले एक थर्माकोल लीजिए और उसको खिड़की का आकार दीजिए क्योंकि यह कूलर के हवा निकलने के लिए होता है। दूसरे थर्माकोल में एक छेद कर ले तार के निकलने के लिए। अब चारों सेलों को उनके कैबिनेट में डालिए। अब मोटर को लीजिए उसमें से दो तार निकल रहे होंगे लाल और काला (मगर काले के बदले नीला और पीला भी हो सकता है) लाल तार को कैबिनेट के + वाले हिस्से के साथ जोड़ दीजिए और दूसरे तार को बचे हुए हिस्से में जोड़ दीजिए अब आप देखोगे कि मोटर घूमना शुरु हो चुका है अगर शुरु न हुआ हो तो तारों को बदल कर देख लेना।

अब नीले वाले तार को बीच से तोड़ लो और तोड़ कर उसमें सोकेट के साथ जोड़ लीजिए। इससे आप कूलर को कर सकते इसके बिना आप कूलर को बंद नहीं कर सकते। अब आप मोटर को ओन,

ऑफ करके देखे वो बंद खुल होगा। अब लकड़ी के फट्टे को बुनियाद बनाकर उससे एक कमरे का निर्माण करें मगर छत को नहीं बनाए। अब मोटर में वो पंखडी को लगा दीजिए और छत के छेद के जरिए कूलर के कैबिनेट के अंदर डालिए मगर पंखे का मुख उस तरफ रखे जिसको आपने खिड़की का आकार दिया था। अब मोटर को फिट करने के लिए सेलो टेप या फिर धागे या कील से उसको फिट कर दीजिए और उसके सोकेट को दूसरे थर्माकोल के छेद में से निकाल लीजिए। अब कैबेनेट का अस्थाई रूप से ढक दीजिए ताकि कुछ पंगा होने पर आप इसे खोल सके अब आपके सामने दो फुट का बिना बिजली से चलने वाला कूलर तैयार है।

तो आप इसको ज़रूर आजमाए क्योंकि इसमें किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं है और मंहगा भी नहीं है।

YEAR 1942 | MONTH | DATE | Type | No. | DUTY (INCLUDING RESULTS AND REMARKS)

TOTALS BROUGHT FORWARD

मैं अपनी गली में दाख़िल हुआ तो देखा कि मेरे दादा जी पड़ोसियों से बातें कर रहे थे। जो उन की उम्र के ही हैं। जब मैं उन के करीब पहुँचा तो उनकी बातों में एक लम्बी ज़िंदगी को खींचते देखा।

उन्होंनें कहा, "मुझे अट्ठारह साल हो गये एम.टी. एन.एल. में काम करते-करते और इन अट्ठारह सालों में कितना कुछ बदलाव आया है शहर में और लोगों में।"

मैं उनकी इस लाईन को सुन कर सोचने लगा आख़िर बात क्या है? आज पहली बार मुझे मेरे दादा जी के मुँह से एम.टी.एन.एल. और मेरे दादा जी के पचास सालों का इतिहास सुनने का मौका मिला है। आज मैं इनकी कहानी को सुनने के बाद इनकी कहानी का वो हिस्सा बन जाता हूँ जो इनके इतिहास को अपने दिमाग़ के उन कोरे पन्ने पर उतार लेगा। जो इस इतिहास से कोरा पड़ा है मै बगल में चुपचाप बैठ गया और उन्होंने पान की पिचकारी डिब्बे पर मारी और शुरू हो गए। अपने एम.टी.एन.एल. में जुड़ने के दिन ताज़ा करने में।

"जब मैंने सुना कि लोगों की भर्ती निकली है टेलीफ़ोन डिर्पाटमेंट में तो मैं भी कोशिश करने लगा, लोगों से सिफ़ारिश करके उन लोगों को चाय-पानी पिलाते हुए जो वहाँ पर अपना काम बनाने की जो वहाँ पर काम करते थे। और मैं टेलीफ़ोन डिपार्टमेंट की लम्बी लाईन में लग गया। छः घंटे के बाद मेरा उस कांउटर पर नम्बर आया जहाँ एक शख़्स नाम, उम्र, पता, कहाँ से आए हो जैसी इंक्वायरी करके नौकरी दे रहे थे। लेकिन नौकरी सिफ़ारिश लाल की ही लग रही थी। मुझे भी सिफ़ारिश से नौकरी मिली तो सही पर कड़ा काम करने वाली।

एम.टी.एन.एल. आउटसाइट वर्क जो एम.टी.एन. एल. के सबसे बड़का काम है। आउटसाईट एम.टी. एन.एल. ऑफिस के बाहर की वो दुनिया है जहाँ लोग वो काम करते हैं जिसे लोग एक-जगह से दूसरी जगह फ़ोन के बटन दबा कर एक-दूसरे का हाल-चाल बड़ी आसानी से ले लेते हैं। पर ये आसानी करने के लिए हम आउटसाइड कर्मचारियों ने धूप, गर्मी, पसीना, फिर बारिश इसी तरह हर मौसम में हमने और मेरे साथियों ने सड़क के किनारे-किनारे न जाने कितने किलोमीटर तक गड्ढे खोदते हुए उनके अंदर टेलीफ़ोन की मोटी-मोटी किलो मीटर तक की तारों को गड्ढों के अंडर ग्रांउड बिछो हुए मोहल्लो तक खींच कर लाते थे। ये सफ़र शुरू होता था उस जगह कि लोगों कि माँग से जहाँ लोग बड़ी मात्रा से टेलीफ़ोन की माँग करते थे। ज़्यादातर लोग ऑफ़िस के लिए और एस.टी.डी. और कुछ रहींस ही लोग लगवाते थे।

उस जगह की माँग उनकी एप्लीकेशनों के ज़रिए देखी और समझी जाती थी। फिर हमारा सफ़र शुरू होता था कि उस जगह कौन-सा एक्सचेंज पास पड़ता है। वहाँ पर गड्ढा खोदते अंडर ग्राउंड टेलीफ़ोन की केबल बिछाते हुए उस जगह की मेन सड़क के किनारे एक बड़ा-सा बॉक्स लगा देते थे। उस बॉक्स के अलग-अलग ब्लाक के लिए वहाँ से गड्ढा खोदते हुए छोटी टेलीफ़ोन की केबल डालते हुए अलग-अलग ब्लॉक के बिजली के खम्बे तक पहुँचाने के बाद फिर उस खम्बे पर एक छोटा-सा बॉक्स लगा देते थे। जिससे लगभग तीस फ़ोन लगा सकते हैं। फिर उस खम्बे से टेलीफ़ोन की तार को उस घर तक खींच देते थे जो शख़्स तीन-चार साल का टेलीफ़ोन का फार्म भर कर इंतज़ार किया करता था। इसी तरह कोई भी नयी बस्ती होती हम इस प्रक्रिया के हिसाब से ही चलते।

एप्लीकेशन कितनी है जितनी ज़्यादा एप्लीकेशन उतना हमारा सफ़र जल्दी शुरू होता। तारे बिछने के बाद भी लोगों को एक या डेढ़ साल लग जाता था। पहले फॉर्म लेने की लम्बी लाईन फिर फॉर्म भर कर धक्का-मुक्की खाते फॉर्म जमा करवाना। जो टेलीफ़ोन डिर्पाटमेंट का आदमी मिले उसकी सिफ़ारिश करना। फ़िर जाकर टेलीफ़ोन लगता था। लेकिन जब एक मोहल्ले में ज़्यादा से ज़्यादा चार या पाँच घरों में ही फ़ोन लगे होते थे तो उनके पड़ोसी दूसरी गलियों या दूसरे मोहल्लों के लोग, जो उनके जान-पहचान के होते थे वो उनका नम्बर अपने रिश्तेदारों में बांट देते थे। उस समय लोगों में एक उत्तेजना देखने को मिलती थी। उनके किसी भी पड़ोसी या किसी जानने वाले के लिए फ़ोन आए तो वो तुरन्त उन्हें बुला देते थे। पर जिस तरह धीरे-धीरे फ़ोन सभी घरों में लगने लगे तो लोगों में एक-दूसरे को बुलाने की उत्तेजना कम होने लगी। लोग एक-दूसरे पर टालने लगे कि उसके फ़ोन पर कर लो उनका घर पास पड़ता है। और इसी के चलते लोगों ने जिद्द में अपने घर भी फ़ोन लगवाने लगे।

जब हम किसी की फ़ोन की कम्पलेंट ठीक करने जाते तो लोग हमें इस तरह की बातें सुनाते कोई उदासी में सुनाता कोई उस शख़्स के ऊपर गुस्से को जाहिर करते हुए सुनाता और हम लोगों से सिफ़ारिश करता कि हमारा फ़ोन जल्दी लगवा दो।

इस तरह का माहौल बन रखा था एक फ़ोन से हमारे आसपास। उस समय जिस घर में फ़ोन लगा होता था वो बस्ती अपने फ़ोन से भी जाना-पहचाना जाता था। साथ में मोहल्ले में रिश्ता क़ायम करना ख़ुद के हाथ में था। जब लोगों के फ़ोन कम थे तो कम्पलेंट भी कम होती थीं। पर जैसे-जैसे हर मोहल्ले के हर घर में फ़ोन लग गए तो कम्पलेंट भी ज़्यादा होने लगी और काम भी ज़्यादा होने लगा। वैसे हमारी कम्पलेंट देखकर ठीक करने की दूरी कम्पलेंट के घर से लेकर खम्बे की तार तक या फिर उससे आगे खम्बे से डायरेक्ट टेलीफ़ोन बॉक्स तक इतनी दूरी से प्रॉब्लम है तो ठीक। नहीं तो प्रॉब्लम एक्सचेंज से हैं पर प्रॉब्लम ज़्यादातर इतनी दूरी पर होती थी। पर एक घर की इतनी दूरी पर ही होती थी। पर एक घर की कंपलेंट ठीक करने जाओ तो पहले तो चाय-पैप्सी से ख़ातिरदारी होती है। फिर काम होता है। दुनिया जानती है सरकारी दामाद हैं ख़ातिरदारी करने से ही काम बनेगा। इसी बीच में आस-पड़ोस के लोग भी उसी समय घेरकर खड़े हो जाएंगे। "अंकल हमारे भी फ़ोन में ये परेशानी हो रही है।" उस घर की परेशानी को देखते-देखते जब सड़क तक पहुँचता हूँ तो हर गुज़रने वाले के चेहरों में से कोई चेहरा पलटते हुए कंपलेंट बोल कर चला जाता।

कोई वहीं पेपसी पिलाकर, मना के, पैसे दे देता और अपनी फ़ोन की कम्पलेन ठीक करवाने अपने घर ले जाता। हर रोज़ की कम्पलेन ठीक करते कुछ इस तरह के शख़्स टकराते ही है। पर एक तकनीक शहर में इस तरह से आई की शुरुआत में सुन कर अचम्भा सा लगा कि बिना तार की उलझ के भी टेलिफ़ोन चलेंगे जो इन फोनों से छोटा होगा उसे कहीं ले जा सकते है। इस बात का असर पूरे शहर पर था। हर शख़्स इस तरह के फोन को खरीदने की चाहत लेकर घुमता था। पर इतना मंहगा होता था कि सिर्फ चाहत लेकर घूमते थे पर खरीदने को दिल गवारा नहीं करता था। इस बात से हम आउटसाईड

कर्मचारियों के खातिरदारी और कम्पलेन में कोई गिरावट नहीं आई पर धीरे-धीरे ये तकनीक शहर में फैलती रही और इतनी फैल गई कि हर शख़्स के हाथों में मोबाइल दिखने लगे है।

इससे एम.टी.एन.एल पर खास प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि एम.टी.एन.एल. देश के हर कोने में अन्डरग्राउन्ड केबल के जरिए देश में गुत्था हुआ है और इसमें इस तरह की गुत्थमगुत्था है कि नई कम्पनियाँ नहीं कर सकती है इसलिए जितनी भी मोबाइल कनेक्शन के नम्बर की कम्पनियाँ है जैसे - हच, आइडिया,

एयरटेल आदि। ये सारी कम्पनियाँ एम.टी.एन. एल की परमिशन ले के चलती है और इनको किराया देती है इनके अन्डरग्राउन्ड केबल के जरिए अपना नेटवर्क चलाने का। इसलिए एम.टी.एन.एल. को कोई नुकसान नहीं है साथ ही वो भी इनके कम्पनियों के कामों पर अपनी परत भी चढ़ा रही है। एम.टी.एन.एल. के मोबाइल के नम्बर बनाना जिस तरह से ये हच, आइडिया, एयरटेल और भी मोबाइल की कम्पनियाँ प्रचार रेट कम करना इस्किम चलाना ये सब भी एम.टी.एन.एल. धीरे-धीरे कर रही है पर इस शहर में चलती ये बड़ी तेज़ उथल-पुथल में हम आउट साइट कर्मचारी जो शहर में लाइन मेन के नाम की पहचान लेकर घूमते है शहर की इस चलती उथल-पुथल की बातों से एक अजीब सी बैचेनी हो रही है। ऐसा लगता है लोग हमसे धीरे-धीरे दूर होते जा रहे है न जाने क्यों? उनकी बातों को सुनकर डर लगने लगा है जब मैं किसी की तारों की उल्झन में फंसकर किसी के टेलिफोन को ठीक कर रहा होता हूँ तो लोग खातिरदारी करते है पर उस पहले कि तरह तेज़ी या जल्दबाज़ी में नहीं और हमारी जरा सी काम को लेकर आनाकानी से पड़ोसी या आस-पास टकराते लोगों के बोलने में बदलाव आया है जैसे बाबूजी तारों की झनझट में क्यों फँसे हुए हो इससे सही तो वाइरलेस हैन्डसेट ले लो, कोई झंझट इस तरह की नहीं होती। इसी तरह जब गलियों और सड़कों या शहर के किसी भी कोने से अपनी साइकिल जिसके केरियल के पीछे आठ फुट की सीडी जो मेरे पीछे वाले साथी के हैन्डल से बंधी होती है वो और मैं जब गुजरते हुए निकलते है तो किसी जगह मोबाइल के पोस्टर को देखके कोई बात कर रहा है, कोई अपने साथियों को किसी मोबाइल के कार्ड की खासियत को बता रहा है, तो कोई पहले एम.टी. एन.एल. के नम्बर लेने के कई साल और झंझट की बातें कर रहा है।

माना ज़माना तेज़ हो गया है हर वक्त में एक नई तकनीक को जान रहा है इस्तेमाल कर रहा है पर मैं अपने अनुभवों से कह सकता हूँ वो पुरानी चीज़ की तारीफ़ फिर से जबान पर लोग लाएंगे जरूर।

GRAND TOTAL [Cols. (1) to (10)]
12 Hrs. 50 Mins.

TOTALS CARRIED FORWARD

हम डिज़िटल दुनिया को उस बातचीत की दुनिया से कैसे जोड़े जिसमें हम रहते है?

हम ऐसे ढाँचे कैसे बनाये जो इन दोनों दुनियाओ को जोड़ पायें?